

दशकुमारचरितम् में वर्णित पुरुषार्थ—चतुष्टय

संगीता जायसवाल



शोध छात्रा, संस्कृत विभाग,
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश— धर्म, अर्थ और काम ऐसे पुरुषार्थ हैं जिनका सम्बन्ध जनसामान्य से है, किन्तु भारतीय समाज में स्थीकृत एक चरम पुरुषार्थ और है जिसे मोक्ष कहा गया है। जो मानव—जीवन का अंतिम लक्ष्य होते हुये भी जनसामान्य के लिए दुर्लभ है जिसे कुछ गिने—चुने महामानव ही प्राप्त कर पाते हैं। दण्डी के अनुसार मोक्ष का अर्थ सांसारिक बन्धन या जन्म—मरण चक्र से मुक्ति है, उन्होंने इसे 'अपवर्ग' भी कहा है।

मुख्यशब्द—दशकुमारचरितम्, पुरुषार्थ—चतुष्टय, अपवर्ग, संस्कृत, साहित्य, भारतीय, संस्कृति।

भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। इसे आर्य लोगों ने विकसित किया, हिन्दुओं ने इसको रूप दिया और युगों के प्रवाह में होकर यह अपने महान् रूप में हमारे समक्ष सनातन एवं महान् रूप में विद्यमान हैं। हिन्दू धर्म में विचारों की अपेक्षा जीवन के मार्ग—प्रदर्शन पर अधिक बल दिया है। यद्यपि विचारों की स्वाधीनता को महत्व दिया है किन्तु हिन्दू धर्म का आचार बहुत कठिन एवं वैज्ञानिक है। हिन्दू धर्म केवल धार्मिक विश्वासों पर नहीं वरन् जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण पर बल देता है। हिन्दू धर्म में पुरुषार्थ चतुष्टय में जीवन की सभी सम्भावनाओं की पूर्ण सिद्धि समाहित हो जाती है। पुरुषार्थ चतुष्टय चार है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म, अर्थ, काम को 'त्रिवर्ग' भी कहा जाता है। इन तीनों पुरुषार्थों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है।

मोक्ष मानव जीवन का परम लक्ष्य है जिनकी प्राप्ति धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के पश्चात् की जाती है। 'धर्म' का तात्पर्य कर्तव्यों की पूर्ति के द्वारा मनुष्य की पाश्विक प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखना है।

'अर्थ' मानव के प्राप्त करने के सहज स्वभाव की ओर संकेत करता तथा व्यक्ति को आजीविका उपार्जित करने तथा उसका समुचित उपभोग करने की प्रेरणा देता है। 'काम' का सम्बन्ध व्यक्ति के भावुक जीवन, सौन्दर्यप्रियता और काम—भावना से है। इस प्रकार मोक्ष एक आध्यात्मिक तथ्य है, धर्म इसे प्राप्त करने का

साधन है जबकि अर्थ और काम सांसारिक जीवन की सफलता को स्पष्ट करते हैं। इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक और सांसारिक लक्ष्य समान रूप से महत्वपूर्ण हैं जिनकी प्राप्ति पुरुषार्थ के पालन से ही की जा सकती है। पुरुषार्थों का विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार दृष्टव्य है—

1. धर्म :—

भारतीय संस्कृति में धर्म की शास्त्रीय व्याख्या की गई है— ‘धारणात् धर्मः¹।’ अर्थात् जिसे धारण किया जाय वह धर्म है। धर्म प्रजा को धारण करता है—

‘धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

यत् स्याद् धारणासंयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः ॥²

अर्थात् जो नियम जीवन धारण करते हैं, अर्थात् व्यक्ति और समाज के जीवन को सहारा देते हैं उन्हें धर्म कहते हैं। धर्म का उद्देश्य और कसौटी प्रजा के जीवन की रक्षा करना है। जिस तत्व में धारण या रक्षण की यह शक्ति हो उसे ही धर्म कहा जायेगा।

महापुराण में :— धर्म की परिभाषा करते हुए उसके ये लक्षण बताये गये हैं— दम, क्षमा, अहिंसा, तप, दान, शील, योग, वैराग्य, सत्यवादिता, अस्तेय, निष्कामता, अपरिग्रह। इनमें से प्रत्येक में स्वतन्त्र रूप से मानव को सुख और शान्ति प्रदान करने की शक्ति है—

‘धर्मस्य तस्य लिंगानि दमः क्षान्तिरहिंसता,
तपोदानं च शीलं च योगो वैराग्यमेव ध।
अहिंसा सत्यवादित्यमचौर्यम त्यक्तकामता,
निष्परिग्रहता चेति प्रोक्तो धर्मः सनातनः।’³

मनु ने धर्म के चार लक्षण माने हैं— वेद, स्मृति तथा सदाचार से समस्त और अपनी आत्मा का प्रिय धर्म होना चाहिए अर्थात् आत्मा अत्यन्त व्यापक है। सज्जनों का आचरण दूसरों के लिए धर्म हैं, जो आत्म-कल्याण करें वही धर्म हैं।

महर्षि कणाद ने तो धर्म के अन्तर्गत लौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस की सिद्धि मानी है—

“यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः।”¹

धर्म के उपरोक्त विवेचना के उपरान्त हम दण्डी के ‘दशकुमारचरितम्’ प्रतिपादित धर्म नामक पुरुषार्थ के स्वरूप पर विचार करते हैं। ‘दशकुमारचरितम्’ में धर्म, अर्थ काम को ‘त्रिवर्ग’ कहा गया है—

“त्रिवर्गसंवन्धिनीभिः कथाभिः”²

सैद्धान्तिक दृष्टि से धर्म को अर्थ और काम से श्रेष्ठ माना था। धर्म को ही अर्थ और काम की उत्पत्ति में सहायक साधन माना गया था। धर्म वाह्य उपायों के अधीन रहने वाला नहीं है अर्थात् धर्म का सम्बन्ध अन्तःकरण की शुद्धि और पवित्रता से है। तत्वदर्शन या सत्य के ज्ञान से धर्म की शुद्धि होती है। धर्माचरण से पवित्र मन को रजोगुण उसी प्रकार लिप्त नहीं कर सकते जैसे आकाश को धूल—

“मूढः खलु लोको यत्सह धर्मेणार्थकामावपि गणयति ।....अर्थकामातिशायी धर्मः.... । ननु धर्मादृतेऽर्थकामयोरनुत्पत्तिरेव । तदनपेक्ष एव धर्मो निवृत्ति सुख प्रसूतिहेतुरात्मसमाधानमात्रसाध्यश्च ।”³

दण्डी की दृष्टि में धर्म मानवीय कर्तव्यों और सदाचार का ही पर्याय है। सदाचार सभी प्रकार के कल्मणों का क्षय करता है—

“कल्मषक्षयकारणं सदाचारमुपदिश्य”¹

लोककल्याणकारी पुण्य—कर्म ही धर्म का स्वरूप है। स्वधर्म का पालन सुचरित और परधर्म का अंगीकार निन्दित चरित्र कहा जाता है निन्दित आचरण वाले मनुष्य भी अपने कल्मणों का क्षय कर स्वधर्म में प्रवृत्त हो सकते हैं। मातगड़. का चरित्र इसका उदाहरण है—

‘तेषु कस्यचित्पुत्रो निन्दापात्रचारित्रो मातगड़ो नामाहं सह किरातबलेन जनपदं प्रविश्य ग्रामेषु धनिनः स्त्रीबालसहितानानीयाटव्यां बन्धने निधाय तेषां सकलधनमपहरन्नुदधृत्य वीतदयो व्यचरम् । कदाचिदेकस्मिन्कान्तारे मदीयसहचरगणेन जिघांस्यमानं भूसुरभेकमवलोक्य दयायन्तचित्तोऽव्रवम् ननु पापाः, न हन्तव्यो ब्राह्मण इति ।’²

एक श्रेष्ठ सुन्दर समाज का आधार स्वधर्म का पालन ही है। अतः दशकुमारचरितम्’ के सभी कुमार अधर्मी, अत्याचारी और पशुतुल्य आचरण करने वाले क्रूरकर्मा नर—पशुओं को दण्ड देते हुए निर्बलों और दलितों के अधिकारों की रक्षा करते हुये समाज में धर्म और सदाचार का आदर्श स्थापित करते हैं। कथानायक राजवाहन निःस्वार्थ भाव से मातगड़. की सहायता के लिए तत्पर होते हैं तो सोमदत्त दुराचारी मत्तकाल का वधकर वीरकेतु की पुत्री वामलोचना के सम्मान की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार, पुष्पोदभव परदार्य और परद्रव्य के अपहरण एवं बलात्कार जैसे दुष्कर्मों में लिप्त दारुवर्मा जैसे नरपिशाच का वध कर धरती तल पर आततायियों का भार करते हैं।

दण्डी की दृष्टि में धर्म एक प्रकार की मर्यादा है जिसका पालन न करने वाले समाज और शासन दोनों ही इस लोक और परलोक से भ्रष्ट हो जाते हैं—

“निर्मर्यादश्च लोको लोकोदितोऽमुतश्च स्वाभिनमात्मानं च भ्रंशयते ।”¹

इस संसार में रहते हुए कुलधर्म का पालन स्वर्ग की प्राप्ति करने वाला और सर्वसुलभ समझा जाता था, इसके विपरीत वनवास से स्वर्ग प्राप्ति सामान्य गृहरथों के लिए कष्टसाध्य मानी जाती थी—

“द्वितीयस्तु सर्वस्यैव सुलभः कुल धर्मानुष्ठायिनः ।”²

राज—धर्म, धर्म—मित्र, तापस—धर्म, पत्नी—धर्म, गणिका धर्म आदि पर भी ‘दशकुमारचरितम्’ में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

छाया के समान सुहृद का अनुसरण करना ‘छायावन्मामनूर्वत्मानस्य’ एवं उसके मित्र के सुख—दुःख में साथ देना मित्र का धर्म माना जाता था। दस कुमारों का चरित्र इस मित्र धर्म का श्रेष्ठ उदाहरण है। मित्रों में हार्दिक संवाद की स्थिति होती थी एवं परस्पर गुप्त या अकथ्य कुछ भी नहीं रहता था—

सतां वख्यस्याभषणपूर्वतया चिरं रूचिरभाषणे भवानस्माकं प्रियवयस्यो जातः । सुहृदामकथ्यं च किमस्ति?

तटस्थ भाव से बन्धु—अबन्धु को न देखते हुए दुष्ट दमन क्षत्रिय का धर्म माना गया था—

“एष खलु क्षात्रधर्मो यद्बन्धुरबन्धुर्वा दुष्टः स निरपेक्षं निग्राह्य इति ।”

2. अर्थ—

अर्थ को हिन्दू धर्म में मानव जीवन का दूसरा पुरुषार्थ माना गया है। अर्थ मनुष्य के आर्थिक और राजनैतिक जीवन के बारे में तथा प्रभुता और सम्पत्ति की लालसा के सम्बन्ध में विचार करता है। बिना अर्थ के व्यक्ति अपने सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों को पूरा नहीं कर सकता। अर्थ को एक पुरुषार्थ इसलिए माना गया है क्योंकि इसे बिना परिश्रम के प्राप्त नहीं किया जा सकता।

भारतीय संस्कृति में भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति का समान महत्व है। भौतिक उन्नति की प्राप्ति के लिए अर्थ पुरुषार्थ का सेवन आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति के सभी प्रयोजन अर्थ से सिद्ध होते हैं, इसलिए संसार के सभी लोग अर्थ की अभिलाषा रखते हैं। तदनुसार ‘अर्थ्यते सर्वे इति अर्थः’ अर्थ शब्द के अनेक अर्थ है तथापि अर्थ पुरुषार्थ का अभिप्राय मुख्य रूप से जीविकोपार्जन अथवा धनार्जन करना है, ताकि व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ धर्म तथा काम पुरुषार्थों की सिद्धि भी कर सके।

दण्डी ने सभी प्रकार के सांसारिक कार्यों के सम्पादन का साधन वित्त या अर्थ को मानते हैं—

“अखिलकार्यनिमित्तं वित्तं”

शासन सम्बन्धी कर्म भी अर्थमूलक ही है—

“अर्थमूला हि दण्डविशिष्टकर्मारम्भा ।”

सम्पत्ति या समृद्धि सामाजिक प्रतिष्ठा का कारण है तो दरिद्रता अवज्ञा या अपमान का— “अवज्ञासोदर्य दारिद्रयम् ।”

वर्तमान युग की भाँति दण्डी के युग में भी दरिद्रता से पीड़ित व्यक्ति आत्महत्या के लिए तत्पर हो जाते थे, जैसा कि धनमित्र के वृतान्त से ज्ञात होता है। मानवीय प्रतिभा, उपायचातुरी और पुरुषार्थ को महत्व देने

वाले दण्डी की दृष्टि में यह कायरता है क्योंकि इस संसार में धन प्राप्ति के अनेक उपाय है, प्राण प्राप्ति के नहीं। अतः व्यक्ति को अपने पुरुषार्थ (उद्योग) से अर्थ रूप पुरुषार्थ को अर्जित करने का प्रयास करना चाहिए—
“सन्त्युपाया धनार्जनद्यद्यस्य बहवः, नैकोऽपि च्छन्नकण्ठप्रतिसन्धानपूर्वस्य प्राणलाभस्य”

अर्थ नामक पुरुषार्थ के सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण करते हुए दण्डी कहते हैं— अर्थ का विषय है— धन का अर्जन, वर्धन और रक्षण इसकी प्राप्ति के साथ हैं— कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, संधि—विग्रह आदि तथा इसका फल या उद्देश्य है— योगपात्र को धन का दान देना—

“अर्थस्तावदर्जनवर्धनरक्षणात्मकः कृषिपाशुपाल्यवाणिज्यसंधिविग्रहादि परिवारः तीर्थ प्रतिपादनफलश्च ।”

प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्य है कि वह अर्थोपार्जन का आय करें। अर्थार्जन में दुर्बलता से बढ़कर कोई पाप नहीं है—

अर्थ का जीवन में महत्व होते हुए भी अर्थ ही सबकुछ नहीं है, धर्म निश्चित रूप से अर्थ से श्रेष्ठ है तथा अर्थ नश्वर और चंचल भी है—

“जलबुद्बुदसमाना विराजामाना संपत्तिलिलतेव सहसैवोदेति नश्यति च ।”

कामः

काम को सांसारिक जीवन की आवश्यकता के रूप में एक पुरुषार्थ माना गया है। इसे सबसे निम्न पुरुषार्थ माना गया है। काम की परिभाषा है—

“काम्यते जनैरिति कामः सुखः”

मनुष्यों द्वारा जिसकी कामना की जाय, वह काम है तथा यह काम सुख ही है। अर्थ प्राप्ति का लक्ष्य सुख की प्राप्ति है। वास्तव में मनुष्य की लोक—यात्रा में जो स्थान धर्म और अर्थ का है, वही स्थान ‘काम’ का भी है। काम शब्द ‘काम्यते इति कामः’ इस व्युत्पत्ति के आधार पर विषय और इन्द्रिय के संयोग से उत्पन्न मानसिक आनन्द, अर्थ बताता है। ‘काम’ शब्द ‘इच्छा’ और कामना को भी कहा जाता है। वस्तुतः मानव उन्हीं पदार्थों की इच्छा करता है, जो उसे मानसिक और शारीरिक आनन्द देते हैं। अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के द्वारा विभिन्न पदार्थों की जो इच्छा मनुष्य करता है और इन सब पदार्थों को पाने के लिए जो प्रयास या उद्योग करता है, वही ‘काम’ है। यदि अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति धर्मानुकूल उद्योग करता है तो वह ‘काम’ पुरुषार्थ की संज्ञा प्राप्त कर लेता है।

इस संसार की सृष्टि के मूल कारण काम नामक पुरुषार्थ के स्वरूप पर विचार करते हुए दण्डी कहते हैं कि सांसारिक विषयों में अत्यासक्त चित्त वाले स्त्री—पुरुषों का अतीव सुखकारी उत्कृष्ट स्पर्श काम है। इस संसार के सभी रमणीय और उज्ज्वल पदार्थ इसके अंग हैं। इसका फल एक ऐसा परमाह्लादिक अपरोक्ष,

स्वसंवेद्य सुख है जो परस्पर आलिंगनादि विमर्दन से जन्म लेता है, स्मरण मात्र में ही मधुर होता है, अहंकार का उद्दीप्त करता है। इससे उत्तम कोई अनुभूति नहीं है—

“फलं पुनः परमाहृदनम् परस्परविमर्दजन्म, स्मर्ययाणमधुरम् उदीरिताभिमानमनुत्तमम् सुखमरोक्षं स्वसंवेद्यमेव ।”

इस काम नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए ही संसार में कठोर तप, महान दान, दारूण युद्ध, समुद्र लंघनादि दुःसाहस किये जाते हैं। यह एक एकसी वृत्ति है जिससे स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, देव-दानव सभी आक्रान्त होते हैं। यह उचितानुचित विवके बुद्धि को समाप्त कर देता है। मारीचि जैसे स्वनामधन्य तपस्वी का काममन्जरी के जाल में फंसकर कामी पुरुषवत् आचरण इसका प्रमाण है—

“स्नातानुलिप्तमारचितमुन्जुमालमारब्धकामिजन वृत्तं निवृत्तस्ववृत्ताभिलाषं क्षणमात्रेगतेऽपि तया विना द्यामानम् ।” दण्डी सी प्रसंग में देवताओं से सम्बन्धि पौराणिक संदर्भों की सूची भी प्रस्तुत करते हैं जो देव योनि में भी काम भाव की प्रबलता को प्रतिपादित करता है। जैसे कि पितामह ब्रह्मा की तिलोत्तमा के प्रति अभिलाषा, भवानीपति-शंकर का मुनिपत्नियों से संपर्क, पद्मनाथ कृष्ण का षोडश सहस्र अन्तः पुरिकाओं से विहार, प्रजापति का अपनी पुत्री के प्रति प्रणय, चन्द्रमा का गुरुपत्नी से सहवास आदि—

तथापि पितामहस्य तिलोत्तमाभिलाषः भवानीपतेर्मुनिपत्नीसहस्रसंदूषणम्, पद्मनाभस्य षोडशसहस्रान्तःपुरविहारः प्रजापतेः स्वदुहितर्यपि प्रणयप्रवृत्तिः, शचीपतेरहल्याजारता, शशांकस्य गुरुतल्पगमनम्, अंशुमालिनो वडवालन्धनम्, अनिलस्य केसरिकलत्रसमागमः, वृहस्पतेरुतथ्यभार्याभिसरणम्, पराशरस्य दाशकन्यादूषणम्, पराशर्यस्य भ्रातुदारसंगतिः अत्रेर्मृगीसमागम इति ।”

जीवन और जगत का यथार्थ चित्रण करने वाले दण्डी समाज में व्याप्त कामाचार का यथार्थ चित्रण करते हैं, जिसमें कामपीड़ितों द्वारा परस्तीगमन, बलपूर्वक कन्या का अपहरण एवं बलात्कार जैसे जघन्य कृत्य किये जाते हैं।

इनके दुष्परिणामों से अवगत कराते हुए धर्म की सीमाओं से मर्यादित काम को ही सनीय मानते हैं।

मोक्ष—

मोक्ष पुरुषार्थों में चरम पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम-भौतिक पुरुषार्थ है जबकि मोक्ष आध्यात्मिक पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ और काम व्यक्ति को सांसारिकता की ओर प्रवृत्त करते हैं और मोक्ष व्यक्ति को सांसारिकता से निर्वृत्त करता है।

व्यावहारिक रूप से मोक्ष एक पुरुषार्थ नहीं बल्कि सभी पुरुषार्थों का अंतिम लक्ष्य है। इसके पश्चात् भी मोक्ष को एक पुरुषार्थ इसलिए स्वीकार किया गया है कि इसे प्राप्त करने के लिए भी व्यक्ति को कठिन साधना और परिश्रम करना आवश्यक है। मोक्ष एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने कर्तव्यों का सर्वोत्तम ढंग से पालन करके आत्म-सन्तुष्टि के सर्वोच्च स्तर को प्राप्त कर लेता है।

गीता के अनुसार—

“मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ।

अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥ ॥

“अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।”

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है—

“ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति”

मोक्ष का तात्पर्य किसी दूसरे लोक अथवा स्वर्ग को प्राप्त कर लेना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ ज्ञान के द्वारा सांसारिक मोह माया से पृथक होकर आत्मा के स्वरूप को पहचान लेना है। इसी को प्रतीकात्मक रूप से पुनर्जन्म के बन्धन से मिलने वाली मुक्ति कहा गया है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में, मोक्ष ही वह प्रमुख लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ के रूप में धर्म, अर्थ और काम की व्यवस्था की गई है।

धर्म, अर्थ और काम ऐसे पुरुषार्थ हैं जिनका सम्बन्ध जनसामान्य से है, किन्तु भारतीय समाज में स्वीकृत एक चरम पुरुषार्थ और है जिसे मोक्ष कहा गया है। जो मानव—जीवन का अंतिम लक्ष्य होते हुये भी जनसामान्य के लिए दुर्लभ है जिसे कुछ गिने—चुने महामानव ही प्राप्त कर पाते हैं। दण्डी के अनुसार मोक्ष का अर्थ सांसारिक बन्धन या जन्म—मरण चक्र से मुक्ति है, उन्होंने इसे ‘अपवर्ग’ भी कहा है। हिन्दू आश्रम—व्यवस्था में स्वीकृत वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम मोक्ष की दिशा में बढ़ने का क्रमिक सपना है। जीवन के तृतीय चरण में वानप्रस्थ आश्रम में रहते हुये ऋषि—मुनियों के निर्देशन में आत्म—साक्षत्कार और आत्मज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता था।

सांसारिक सुखों से विरक्त अथवा सांसारिक वंचनाओं से निर्वेद को प्राप्त युवा भी पारलौकिक अभ्युदय को प्राप्त करने के लिए मोक्ष मार्ग पर चल पड़ते थे। ऋषि—मुनि अथवा तपस्वी उनके मार्ग दर्शक होते थे—

“ऐहिकस्य सुखस्याभाजनं जनोऽयमामुष्काय श्वोसीयायार्ताभ्युपपत्तिवित्त—योर्भगवत्पादयोर्मूलं शरणमभिः प्रपन्नः

इति ।”

एवं

“जैनायतने मुनिनैकेनोपरिष्टमोक्षवर्त्मा ।”

सन्दर्भ—

1. दशकुमारचरितम्, उ०पी० उच्छ्वास, 8 पृष्ठ 415
2. वही, उच्छ्वास 2, पृष्ठ 138
3. वही पृष्ठ 101
4. वही, पू०पी०, उच्छ्वास, 4 पृष्ठ 67—68
5. वही, उच्छ्वास 2, पृष्ठ 168
6. मुण्डकोपनिषद्, 3 / 2 / 9